गद्य खंड

रामचंद्र शुक्ल

(सन् 1884-1941)

रामचंद्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती ज़िले के अगोना गाँव में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा उर्दू-अंग्रेज़ी और फ़ारसी में हुई थी। उनकी विधिवत शिक्षा इंटरमीडिएट तक ही हो पाई। बाद में उन्होंने स्वाध्याय द्वारा संस्कृत, अंग्रेज़ी, बाँग्ला और हिंदी के प्राचीन तथा नवीन साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया। कुछ समय तक वे मिर्ज़ापुर के मिशन हाई स्कूल में चित्रकला के अध्यापक रहे। सन् 1905 में वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा में ***हिंदी शब्द सागर*** *के निर्माण कार्य में सहायक संपादक के पद पर नियुक्त होकर काशी आ गए और बाद में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक बने। बाबू श्यामसुंदर दास के अवकाश ग्रहण के बाद वे हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे और इसी पद पर कार्य करते हुए यहीं उनका निधन हुआ। काशी ही उनकी कर्मस्थली रही।*

आचार्य शुक्ल हिंदी के उच्चकोटि के आलोचक, इतिहासकार और साहित्य-चिंतक हैं। विज्ञान, दर्शन, इतिहास, भाषा विज्ञान, साहित्य और समाज के विभिन्न पक्षों से संबंधित लेखों, पुस्तकों के मौलिक लेखन, संपादन और अनुवादों के बीच से उनका जो ज्ञान संपन्न व्यापक व्यक्तित्व उभरता है, वह बेजोड़ है। उन्होंने भारतीय साहित्य की नयी अवधारणा प्रस्तुत की और हिंदी आलोचना का नया स्वरूप विकसित किया। हिंदी साहित्य के इतिहास को व्यवस्थित करते हुए उन्होंने हिंदी कवियों की सम्यक समीक्षा की तथा इतिहास में उनका स्थान निर्धारित किया। आलोचनात्मक लेखन के अलावा उन्होंने भाव और मनोविकार संबंधी उच्चकोटि के निबंधों की भी रचना की।

शुक्ल जी की गद्य शैली विवेचनात्मक है, जिसमें विचारशीलता, सूक्ष्म तर्क-योजना तथा सहृदयता का योग है। व्यंग्य और विनोद का प्रयोग करते हुए वे अपनी गद्य शैली को जीवंत और प्रभावशाली बनाते हैं। उनके लेखन में विचारों की दृढ़ता, निर्भीकता और आत्मविश्वास की एकता मिलती है। उनका शब्द-चयन और शब्द-संयोजन व्यापक है, जिसमें तत्सम शब्दों से लेकर प्रचलित उर्दू शब्दों तक का प्रयोग दिखाई देता है। अत्यंत सारगर्भित, विचार प्रधान, सूत्रात्मक वाक्य-रचना उनकी गद्य शैली की एक बड़ी विशेषता है।

*आचार्य शुक्ल की कीर्ति का अक्षय स्रोत उनके द्वारा लिखित **हिंदी साहित्य का इतिहास** है। इसे उन्होंने पहले **हिंदी शब्द सागर** की भूमिका के रूप में लिखा था जो बाद में परिष्कृत और संशोधित रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। उनके कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं–**गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, चिंतामणि (चार खंड) और रस मीमांसा** आदि। इसके अलावा उन्होंने **जायसी ग्रंथावली** एवं **भ्रमरगीत सार** का संपादन किया तथा उनकी लंबी भूमिका लिखी।*

*संस्मरणात्मक निबंध **प्रेमघन की छाया स्मृति** में शुक्ल जी ने हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रति अपने प्रारंभिक रुझानों का बड़ा रोचक वर्णन किया है। उनका बचपन साहित्यिक परिवेश से भरापूरा था। बाल्यावस्था में ही किस प्रकार भारतेंदु एवं उनके मंडल के अन्य रचनाकारों विशेषत: प्रेमघन के सान्निध्य में शुक्ल जी का साहित्यकार आकार ग्रहण करता है, उसकी अत्यंत मनोहारी झाँकी यहाँ प्रस्तुत हुई है। प्रेमघन के व्यक्तित्व ने शुक्ल जी की समवयस्क मंडली को किस तरह प्रभावित किया, हिंदी के प्रति किस प्रकार आकर्षित किया तथा किसी रचनाकार के व्यक्तित्व निर्माण आदि से संबंधित पहलुओं का बड़ा चित्ताकर्षक चित्रण इस निबंध में किया गया है।*

प्रेमघन की छाया-स्मृति

मेरे पिताजी फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता और पुरानी हिंदी कविता के बड़े प्रेमी थे। फ़ारसी कवियों की उक्तियों को हिंदी कवियों की उक्तियों के साथ मिलाने में उन्हें बड़ा आनंद आता था। वे रात को प्रायः रामचरितमानस और रामचंद्रिका, घर के सब लोगों को एकत्र करके बड़े चित्ताकर्षक ढंग से पढ़ा करते थे। आधुनिक हिंदी-साहित्य में भारतेंदु जी के नाटक उन्हें बहुत प्रिय थे। उन्हें भी वे कभी-कभी सुनाया करते थे। जब उनकी बदली हमीरपुर ज़िले की राठ तहसील से मिर्ज़ापुर हुई तब मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी। उसके पहिले ही से भारतेंदु के संबंध में एक अपूर्व मधुर भावना मेरे मन में जगी रहती थी। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक के नायक राजा हरिश्चंद्र और कवि हरिश्चंद्र में मेरी बाल-बुद्धि कोई भेद नहीं कर पाती थी। 'हरिश्चंद्र' शब्द से दोनों की एक मिलीजुली भावना एक अपूर्व माधुर्य का संचार मेरे मन में करती थी। मिर्ज़ापुर आने पर कुछ दिनों में सुनाई पड़ने लगा कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के एक मित्र यहाँ रहते हैं, जो हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि हैं और जिनका नाम है उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी।

भारतेंदु-मंडल की किसी सजीव स्मृति के प्रति मेरी कितनी उत्कंठा रही होगी, यह अनुमान करने की बात है। मैं नगर से बाहर रहता था। एक दिन बालकों की मंडली जोड़ी गई। जो चौधरी साहब के मकान से परिचित थे, वे अगुआ हुए। मील डेढ़ का सफर तै हुआ। पत्थर के एक बड़े मकान के सामने हम लोग जा खड़े हुए। नीचे का बरामदा खाली था। ऊपर का

बरामदा सघन लताओं के जाल से आवृत था। बीच-बीच में खंभे और खुली जगह दिखाई पड़ती थी। उसी ओर देखने के लिए मुझसे कहा गया। कोई दिखाई न पड़ा। सड़क पर कई चक्कर लगे। कुछ देर पीछे एक लड़के ने उँगली से ऊपर की ओर इशारा किया। लता-प्रतान के बीच एक मूर्ति खड़ी दिखाई पड़ी। दोनों कंधों पर बाल बिखरे हुए थे। एक हाथ खंभे पर था। देखते ही देखते यह मूर्ति दृष्टि से ओझल हो गई। बस, यही पहली झाँकी थी।

ज्यों-ज्यों मैं सयाना होता गया, त्यों-त्यों हिंदी के नूतन साहित्य की ओर मेरा झुकाव बढ़ता गया। क्वीन्स कालेज में पढ़ते समय स्वर्गीय बा.रामकृष्ण वर्मा मेरे पिता जी के सहपाठियों में थे। भारत जीवन प्रेस की पुस्तकें प्रायः मेरे यहाँ आया करती थीं पर अब पिता जी उन पुस्तकों को छिपाकर रखने लगे। उन्हें डर हुआ कि कहीं मेरा चित्त स्कूल की पढ़ाई से हट न जाए, मैं बिगड़ न जाऊँ। उन्हीं दिनों पं. केदारनाथ जी पाठक ने एक हिंदी पुस्तकालय खोला था। मैं वहाँ से पुस्तकें ला-लाकर पढ़ा करता। एक बार एक आदमी साथ करके मेरे पिता जी ने मुझे एक बारात में काशी भेजा। मैं उसी के साथ घूमता-फिरता चौखंभा की ओर जा निकला। वहीं पर एक घर में से पं. केदारनाथ जी पाठक निकलते दिखाई पड़े। पुस्तकालय में वे मुझे प्रायः देखा करते थे। इससे मुझे देखते ही वे वहीं खड़े हो गए। बात ही बात में मालूम हुआ कि जिस मकान में से वे निकले थे, वह भारतेंदु जी का घर था। मैं बड़ी चाह और कुतूहल की दृष्टि से कुछ देर तक उस मकान की ओर न जाने किन-किन भावनाओं में लीन होकर देखता रहा। पाठक जी मेरी यह भावुकता देख बड़े प्रसन्न हुए और बहुत दूर मेरे साथ बातचीत करते हुए गए। भारतेंदु जी के मकान के नीचे का यह हृदय-परिचय बहुत
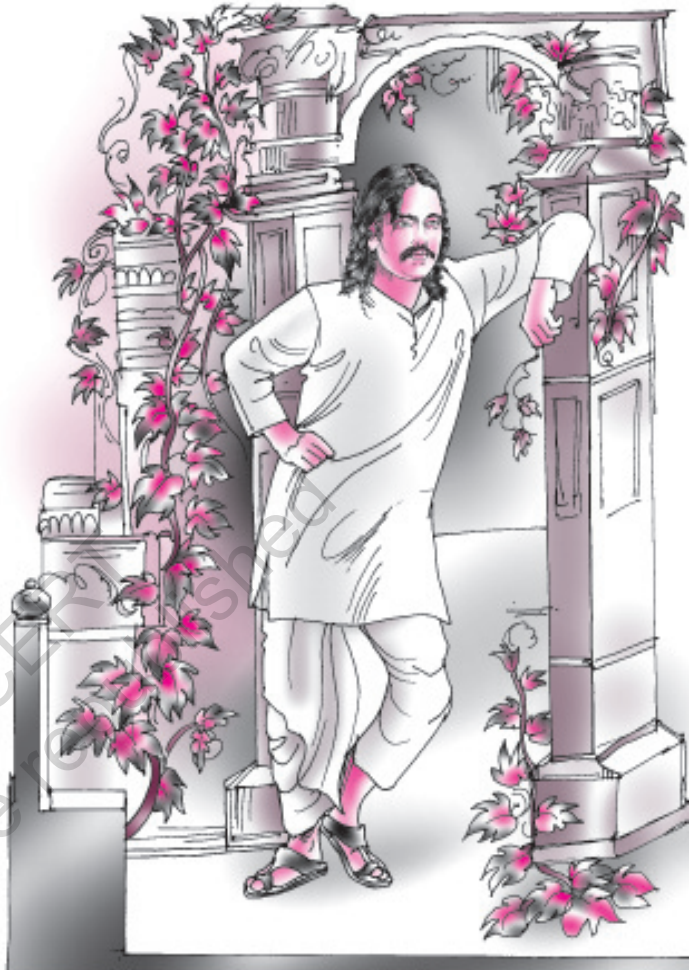
शीघ्र गहरी मैत्री में परिणत हो गया। 16 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते तो समवयस्क हिंदी-प्रेमियों की एक खासी मंडली मुझे मिल गई, जिनमें श्रीयुत् काशीप्रसाद जी जायसवाल, बा. भगवानदास जी हालना, पं. बदरीनाथ गौड़, पं. उमाशंकर द्विवेदी मुख्य थे। हिंदी के नए पुराने लेखकों की चर्चा बराबर इस मंडली में रहा करती थी। मैं भी अब अपने को एक लेखक मानने लगा था। हम लोगों की बातचीत प्राय: लिखने-पढ़ने की हिंदी में हुआ करती, जिसमें 'निस्संदेह' इत्यादि शब्द आया करते थे। जिस स्थान पर मैं रहता था, वहाँ अधिकतर वकील, मुख्तारों तथा कचहरी के अफ़सरों और अमलों की बस्ती थी। ऐसे लोगों के उर्दू कानों में हम लोगों की बोली कुछ अनोखी लगती थी। इसी से उन्होंने हम लोगों का नाम 'निस्संदेह' लोग रख छोड़ा था। मेरे मुहल्ले में कोई मुसलमान सब-जज आ गए थे। एक दिन मेरे पिता जी खड़े-खड़े उनके साथ कुछ बातचीत कर रहे थे। इसी बीच मैं उधर जा निकला। पिता जी ने मेरा परिचय देते हुए उनसे कहा–"इन्हें हिंदी का बड़ा शौक है।" चट जवाब मिला–"आपको बताने की ज़रूरत नहीं। मैं तो इनकी सूरत देखते ही इस बात से 'वाकिफ़' हो गया।" मेरी सूरत में ऐसी क्या बात थी, यह इस समय नहीं कह सकता। आज से तीस वर्ष पहिले की बात है।
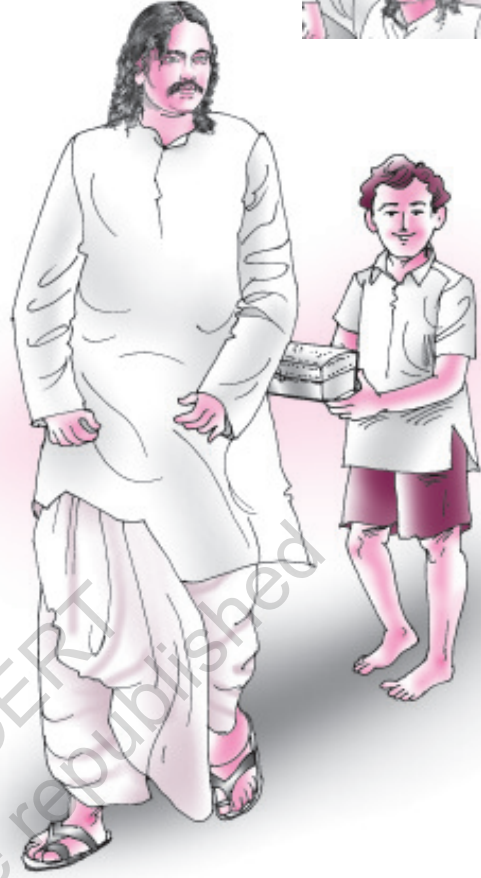
चौधरी साहब से तो अब अच्छी तरह परिचय हो गया था। अब उनके यहाँ मेरा जाना एक लेखक की हैसियत से होता था। हम लोग उन्हें एक पुरानी चीज़ समझा करते थे। इस पुरातत्व की दृष्टि में प्रेम और कुतूहल का एक अद्‌भुत मिश्रण रहता था। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि चौधरी साहब एक खासे हिंदुस्तानी रईस थे। वसंत पंचमी, होली इत्यादि अवसरों पर उनके यहाँ खूब नाचरंग और उत्सव हुआ करते थे। उनकी हर एक अदा से रियासत और तबीयतदारी टपकती थी। कंधों तक बाल लटक रहे हैं। आप इधर से उधर टहल रहे हैं। एक छोटा सा लड़का पान की तश्तरी लिए पीछे-पीछे लगा हुआ है। बात की काँट-छाँट का क्या कहना है! जो बातें उनके मुँह से निकलती थीं, उनमें एक विलक्षण वक्रता रहती थी। उनकी बातचीत का ढंग उनके लेखों के ढंग से एकदम निराला

होता था। नौकरों तक के साथ उनका संवाद सुनने लायक होता था। अगर किसी नौकर के हाथ से कभी कोई गिलास वगैरह गिरा तो उनके मुँह से यही निकला कि "कारे बचा त नाहीं"। उनके प्रश्नों के पहिले 'क्यों साहब' अकसर लगा रहता था।

वे लोगों को प्राय: बनाया करते थे, इससे उनसे मिलनेवाले लोग भी उन्हें बनाने की फ़िक्र में रहा करते थे। मिर्ज़ापुर में पुरानी परिपाटी के एक बहुत ही प्रतिभाशाली कवि रहते थे, जिनका नाम था– वामनाचार्यगिरि। एक दिन वे सड़क पर चौधरी साहब के ऊपर एक कविता जोड़ते चले जा रहे थे। अंतिम चरण रह गया था कि चौधरी साहब अपने बरामदे में कंधों पर बाल छिटकाए खंभे के सहारे खड़े दिखाई पड़े। चट कवित्त पूरा हो गया और वामनजी ने नीचे से वह कवित्त ललकारा, जिसका अंतिम अंश था–"खंभा टेकि खड़ी जैसे नारि मुगलाने की।"

एक दिन कई लोग बैठे बातचीत कर रहे थे कि इतने में एक पंडित जी आ गए। चौधरी साहब ने पूछा। "कहिए क्या हाल है?" पंडित जी बोले–"कुछ नहीं, आज एकादशी थी, कुछ जल खाया है और चले आ रहे हैं।" प्रश्न हुआ–"जल ही खाया है कि कुछ फलाहार भी पिया है?"

एक दिन चौधरी साहब के एक पड़ोसी उनके यहाँ पहुँचे। देखते ही सवाल हुआ–"क्यों साहब, एक लफ़्ज़ मैं अकसर सुना करता हूँ, पर उसका ठीक अर्थ समझ में न आया। आखिर घनचक्कर के क्या मानी है। उसके क्या लक्षण हैं?" पड़ोसी महाशय बोले–"वाह! यह क्या मुश्किल बात है। एक दिनरात को सोने के पहले कागज़ कलम लेकर सवेरे से रात तक जो-जो काम किए हों, सब लिख जाइए और पढ़ जाइए।"

मेरे सहपाठी पं. लक्ष्मीनारायण चौबे, बा. भगवानदास हालना, बा. भगवानदास मास्टर–इन्होंने 'उर्दू बेगम' नाम की एक बड़ी ही विनोदपूर्ण पुस्तक लिखी थी, जिसमें उर्दू की उत्पत्ति, प्रचार आदि का वृत्तांत एक कहानी के ढंग पर दिया गया था–इत्यादि कई आदमी गरमी के दिनों में छत पर बैठे चौधरी साहब से बातचीत कर रहे थे। चौधरी साहब के पास ही एक लैम्प जल रहा था। लैम्प की बत्ती एक बार भभकने लगी। चौधरी साहब नौकरों को आवाज़ देने लगे। मैंने चाहा कि बढ़कर बत्ती नीचे गिरा दूँ, पर लक्ष्मीनारायण ने तमाशा देखने के विचार से मुझे धीरे से रोक लिया। चौधरी साहब कहते जा रहे हैं, "अरे! जब फूट जाई तबै चलत आवह।" अंत में चिमनी ग्लोब के सहित चकनाचूर हो गई, पर चौधरी साहब का हाथ लैम्प की तरफ़ न बढ़ा।

उपाध्याय जी नागरी को भाषा मानते थे और बराबर नागरी भाषा लिखा करते थे। उनका कहना था कि "नागर अपभ्रंश से जो शिष्ट लोगों की भाषा विकसित हुई, वही नागरी कहलाई।" इसी प्रकार वे मिर्ज़ापुर न लिखकर मीरजापुर लिखा करते थे, जिसका अर्थ वे करते थे लक्ष्मीपुर–मीर= समुद्र+जा=पुत्री+पुर।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने अपने पिता जी की किन-किन विशेषताओं का उल्लेख किया है?
2. बचपन में लेखक के मन में भारतेंदु जी के संबंध में कैसी भावना जगी रहती थी?
3. उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की पहली झलक लेखक ने किस प्रकार देखी?
4. लेखक का हिंदी साहित्य के प्रति झुकाव किस तरह बढ़ता गया?
5. 'निस्संदेह' शब्द को लेकर लेखक ने किस प्रसंग का ज़िक्र किया है?
6. पाठ में कुछ रोचक घटनाओं का उल्लेख है। ऐसी तीन घटनाएँ चुनकर उन्हें अपने शब्दों में लिखिए।
7. "इस पुरातत्व की दृष्टि में प्रेम और कुतूहल का अद्‌भुत मिश्रण रहता था।" यह कथन किसके संदर्भ में कहा गया है और क्यों? स्पष्ट कीजिए।
8. प्रस्तुत संस्मरण में लेखक ने चौधरी साहब के व्यक्तित्व के किन-किन पहलुओं को उजागर किया है?
9. समवयस्क हिंदी प्रेमियों की मंडली में कौन-कौन से लेखक मुख्य थे?
10. 'भारतेंदु जी के मकान के नीचे का यह हृदय-परिचय बहुत शीघ्र गहरी मैत्री में परिणत हो गया।' कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।

भाषा-शिल्प

1. हिंदी-उर्दू के विषय में लेखक के विचारों को देखिए। आप इन दोनों को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं या भिन्न भाषाएँ?
2. चौधरी जी के व्यक्तित्व को बताने के लिए पाठ में कुछ मज़ेदार वाक्य आए हैं–उन्हें छाँटकर उनका संदर्भ लिखिए।
3. पाठ की शैली की रोचकता पर टिप्पणी कीजिए।

योग्यता-विस्तार

1. भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों के नाम और उनकी प्रमुख रचनाओं की सूची बनाकर स्पष्ट कीजिए कि आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में इन लेखकों का क्या योगदान रहा?
2. आपको जिस व्यक्ति ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं को लिखिए।
3. यदि आपको किसी साहित्यकार से मिलने का अवसर मिले तो आप उनसे क्या-क्या पूछना चाहेंगे और क्यों?
4. संस्मरण साहित्य क्या है? इसके बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

उत्कंठा	–	लालसा, बेचैनी
आवृत	–	ढका हुआ, घेरा हुआ
लता-प्रतान	–	लता का फैलाव, लतातंतु
परिणत	–	अन्य रूप में बदला हुआ, परिणाम या रूपांतर को प्राप्त
मुख्तार	–	अधिकार प्राप्त व्यक्ति, व्यक्ति विशेष के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने का अधिकारी, एजेंट
अमला	–	कर्मचारी मंडल
वाकिफ़	–	जानकार, परिचित
वक्रता	–	टेढ़ापन, कुटिलता
परिपाटी	–	सिलसिला, रीति
अपभ्रंश	–	प्राकृत भाषाओं का परवर्ती रूप जिनसे उत्तर भारत की आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी जाती है।
चित्ताकर्षक	–	मन को आकर्षित करनेवाला